ओ३म्-सुप्रभा

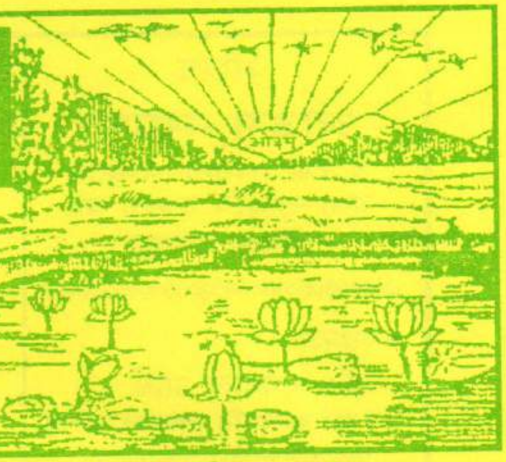

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

ओ३म् क्रतो स्मर ।

वर्ष–7, अंक–11 | जुलाई 2014 | श्रावण

सृष्टि संवत् 1960853115 | विक्रमी संवत् 2071 | दयानन्दाब्द 191

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥

–अथर्व० १०।१०।१

हे वीर सैनिकों ! अपने ध्वजों के साथ उठो और अपने कवचों को धारण करके, सर्पों के समान हिंसक शत्रुओं पर धावा बोल दो ।

सम्पादक

मूलचन्द गुप्त

ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली–110045

ओ३म्

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

• *परामर्श*

डॉ० धर्मपाल आर्य
(पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार)
ए/एच-16, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
दूरभाष-011-27472014
011-27471776

• *सम्पादक*

मूलचन्द गुप्त
(पूर्व प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली)

• *प्रकाशक*

मूलचन्द गुप्त,
अध्यक्ष, **ओम्-प्रतिष्ठान**
कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली-110045
दूरभाष-9650886070
011-25394083

ई-मेल-Ompratisthan@gmail.com

ओ३म्-सुप्रभा में प्रकाशित लेखों के सभी विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है । वे विचार लेखक के अपने हैं ।

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं० 17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र-दिल्ली

उद्देश्य

✧ वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता का पोषण करना, वैदिक विचार-धारा के अनुसार मानव-निर्माण करना, समरस और समेकित समाज का संगठन करना, विश्व भर में सुख और शान्ति की स्थापना करने का प्रयास करना **ओम्-प्रतिष्ठान** का मुख्य उद्देश्य है ।

✧ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर विभिन्न बहुआयामी गतिविधियों का संचालन किया जाएगा ।

✧ रचनात्मक और प्रेरक साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण का, इन गति-विधियों में प्रमुख स्थान होगा ।

✧ इस पत्रिका में समय-समय पर आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, नैतिक, वैश्विक चेतना जागृत करने से सम्बन्धित विषयों पर मौलिक लेख तथा समाचार प्रकाशित किए जायेंगे ।

✧ **ओ३म्** परमपिता परमात्मा का निज नाम है । परमात्मा इस सृष्टि का नियन्ता है । सृष्टि से सम्बन्धित सभी विषयों का इसमें समावेश किया जाएगा ।

✧ **ओ३म्-सुप्रभा** का प्रकाशन पूर्णतया निजी स्तर पर किया जा रहा है । उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रति मास देश-विदेश के आर्य विद्वानों, लेखकों, उपदेशकों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशकों एवं संस्थाओं को ओ३म्-सुप्रभा **निःशुल्क** भेजी जा रही है।

✧ लघु-पत्रिका के कारण, प्रकाशनार्थ लेख न भेजें ।

✧ सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने सुझाव भेजकर कृतार्थ करते रहें ।

# ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

रचना, स्थिति और प्रलय, कर्मों का फल जिस का विधान है ।
ओ३म् सुप्रभा ज्ञान अनुपम, सुरभित जिस से जन कुसुम प्राण है ।।

वर्ष–7 , अंक–11 जुलाई 2014 श्रावण
सृष्टि संवत् 1960853115 विक्रमी संवत् 2071 दयानन्दाब्द 191

ओ३म्–महिमा

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमि बुध्नो न जीर्यति ।

—महात्मा नारायण स्वामी

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमि बुध्नो न जीर्यति दिशोह्यस्य स्त्रक्तयोद्योर-स्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳ श्रितम् ॥

तस्य प्राचीदिग्जुहूर्नाम सहमानानाम दक्षिणा राज्ञी प्रतीची सुभूता-नामोदीची। तासां वायुर्वत्सः स य एवमेवं वायुं दिशां वत्संवेद न पुत्र रोदꣳ रोदिति । सोऽहमेतमर्व वायुं दिशां वत्सं वेद मापुत्ररोदꣳ रुदम्॥

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना । प्राणंप्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना। भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना । भुवःप्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना । स्वःप्रपद्येऽमुनाऽ-मुनाऽमुना ॥

स यदवोचं प्राण प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्चतमेव तत्प्रापत्सि ॥ छान्दोग्य उपनिषद् 3.15.1-4

अर्थ–(कोशः, अन्तरिक्षोदरः, भूमिबुध्नः) एक कोश है जिसका उदर अन्तरिक्ष, पादस्थान भूमि है (अस्य, हि, दिशः, स्त्रक्तयः) इसके कोने दिशाएं हैं। (अस्य, द्यौः, उत्तरम् बिलम्) जिसका उत्तर (ऊपरी भाग) द्युलोक छिद्र है। (न जीयति) वह क्षीण नहीं होता (सः, एषः, कोशः, वसुधानः) वह यह कोश धन से पूर्ण है (तस्मिन्, इद , विश्वं श्रितम्) उसमें यह विश्व आश्रित है ॥

(तस्य प्राचीदिग्) उसकी पूर्वीदिशा का (जहूः, नाम) नाम जुहू है । (दक्षिणा सहमाना नाम) और दक्षिणादिशा का नाम सहमाना है । (प्रतीची, नाम, राज्ञी) पश्चिमी दिशा का नाम राज्ञी है (उदीची, नाम, सुभूता) उत्तर दिशा का नाम सुभूता है । तासाम्, वायुः, वत्स उन (दिशाओं) का वायु

बछड़ा है (सः, यः, दिशाम्, वत्सं एतं, वायुम्, एवं वेद) सो जो कोई दिशाओं के बछड़े इस वायु को इस प्रकार जानता है (पुत्ररोदं, न, रोदति) पुत्र निमित्त रोदन नहीं करता । (सः, अहं, दिशां, वत्सं, एतं, वायुं, एवं वेद) वह मैं दिशाओं के बछड़े इस वायु को इस प्रकार जानता हूं । (पुत्ररोदं, मा, रुदम्) पुत्र के (मृत्यु निमित्त) रोदन को नहीं करता हूं ॥

अमुक से अमुक (अरिष्टं, कोशं, प्रपद्ये) अक्षय कोश को प्राप्त होता हूं । अमुक से अमुक से अमुक से मैं प्राण को प्राप्त होता हूं । अमुक से अमुक से अमुक से मैं भू को पाता हूं । अमुक से अमुक से अमुक से मैं भुवः को प्राप्त करता हूं । अमुक से अमुक से अमुक से मैं स्वः को प्राप्त होता हूं ॥

(सः, प्राणं, प्रपद्ये, इति, यद्, अवोचम्) सो प्राण को प्राप्त होता हूं ऐसा जो मैंने कहा था (इदं, सर्वं, भूतं, यद्, इदम्, किञ्च, प्राणः वैः) ये सब प्राणी जो कुछ (इस पृथिवी पर हैं) प्राण ही है । (तमेव, तत् प्रापत्सि) उसी प्राण को प्राप्त किया है ॥

ओ३म्–महिमा

–चौ० तेजसिंह मलिक

विनती है मेरी आपसे जी ओंकार ।

भारत में सब नर और नारी, मुद्दत से हो रहे दुखारी ।
आर्य से हो गए आज अनारी, तजि वेदों का प्रचार ॥
विनती है मेरी..........

घर-घर में भाई से भाई, आपस में करि रहे लड़ाई ।
अब दीजै प्रभु सुमति दवाई, मिटि जाइ सब तकरार ॥
विनती है मेरी..........

ये भारत फिर लासानी हो, पर उपकारी और दानी हो ।
कोई न इसमें अज्ञानी हो, हों सब विद्या के भण्डार ॥
विनती है मेरी..........

अब प्रभु कुमति निवारण कीजै, विद्या फिर भारत मे दीजै ।
"तेजसिंह" अब शरण में लीजै, हे प्रभु जगदाधार ॥
विनती है मेरी आपसे जी ओंकार ॥

[15 अक्तूबर, सन् 1864 को ग्राम पारसौल, जनपद गौतमबुद्धनगर, उ०प्र० में जन्मे चौ० तेजसिंह जी मलिक आर्यसमाज के यशस्वी प्रसिद्ध भजनोपदेशक हुए । आपने आर्यसमाज और शुद्धि सभा आगरा के माध्यम से सम्पूर्ण उत्तर भारत में घूम-घूम कर आर्यसमाज का प्रचार तथा देश की स्वतन्त्रता के लिए जन-जागरण किया । आपका बलिदान शुद्धि-विरोधियों द्वारा दूध में विष पिलाने के कारण अगस्त सन् 1942 में हुआ । –सम्पादक]

सम्पादकीय

'ओ३म् सुप्रभा' का जुलाई 2014 का अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है । इस अंक में हमने यथापूर्व वैदिक विद्वानों के सामयिक लेख दिए हैं । 'स्मरण-अनुकरण-नमन' के अन्तर्गत हमने उन वैदिक विद्वानों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं जिन्होंने वैदिक धर्म के उन्नयन तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के प्रचार प्रसार हेतु अहर्निश कार्य किया है । उन्होंने सामाजिक न्याय के क्षेत्र में बढ़-चढ़ कर कार्य किया । ऋषिवर चाहते थे कि सभी को समान अवसर मिले । जन्म के आधार पर किसी के साथ अन्याय न हो । वैदिक धर्मानुयायियों ने भाषा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है । उन्होंने वैदिक साहित्य सृजन के क्षेत्र में प्रतिमान स्थापित किए हैं । हम श्री विमलचन्द्र विमलेश जी, श्री विश्वनाथ जी, श्री शिवचन्द्र जी, पं० विश्वम्भरसहाय प्रेमी जी, मुनि ओमाश्रित जी, आचार्य विश्वेश्वर जी, डॉ० वाचस्पति जी उपाध्याय तथा श्री वीरेन्द्र मुनि जी के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ विशेष दिवस मनाए जाने का प्रचलन चल पड़ा है। हमारे देश में तो सम्मान करने की परम्परा सदा से ही रही है । 'अभिभावक दिवस' इस मास मनाया जाएगा । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखते हुए शतपथ ब्राह्मण का यह वचन उद्धृत किया है–मातृमान्, पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद । वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता तथा तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है । माता पिता आचार्य की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश सम्मुल्लास में ऋग्वेद के मन्त्र *'अर्चत प्रार्चत प्रिय मेधासो अर्चत'* की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना । दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव । उसकी भी माता के समान सेवा करनी । तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी । चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी रखता है, उसकी सेवा करे । पांचवां स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है ।'

इसी मास आर्य पर्व 'हरि तृतीया' का भी आयोजन किया जाएगा । वास्तव में पर्वों का विशेष महत्व है । पर्वों के आयोजन से व्यक्ति में विशेष उत्साह एवं ऊर्जा का संचार होता है । ऐसे अवसरों पर हमारा कर्तव्य है कि

हम परम पिता परमात्मा का धन्यवाद करें कि उन्होंने हमें मानव जीवन देकर कृतार्थ किया है ।

राज्य व्यवस्था–

राजा का कर्त्तव्य है कि वह देश में ऐसी व्यवस्था चलाए जो सभी के लिए योगक्षेमकारी हो । सभी नागरिक प्रसन्नता का अनुभव करें । उन्हें आवश्यकता की सभी वस्तुएं प्राप्त हों तथा वे राष्ट्रकल्याण के लिए स्वयं को प्रस्तुत करने में समर्थ हों । यह अनिवार्य सत्य है कि देश में अराजकता फैली हुई है । आतंकवादी समय-समय पर घोर अव्यवस्था फैलाने का कार्य करते हैं । जमाखोर देश में महँगाई को बढ़ाने का कार्य करते हैं । इन सब के तिरस्कार के लिए राज्यव्यवस्था सुचारू रहनी चाहिए । सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे राज्य व्यवस्था में नियमानुसार सहयोग दें ।

हिन्दी भाषा की व्यवहारिकता–

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने देश की आवश्यकताओं का अनुभव करते हुए, राष्ट्रीय एकता के सम्पादन हेतु अपने सम्पूर्ण साहित्य का सृजन हिन्दी भाषा के माध्यम से किया । वे कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक सर्वत्र हिन्दी भाषा के प्रचलन के समर्थक थे । जब भारत को स्वाधीनता मिली उस समय भी सभी राष्ट्र नेताओं के हृदय में यह विचार था कि हिन्दी भाषा ही सारे देश को एक सूत्र में पिरो सकती है । आगे चलकर हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया । सारे देश को भाषा की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया गया । यह भी स्पष्ट है कि राजनैतिक दृष्टि से किसी भी निर्णय का विरोध स्वाभाविक है । दक्षिण में हिन्दी के विरोध में आवाज उठी और अन्ततः यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं का भी राज्यकाज की भाषा के रूप में प्रयोग होता रहेगा । पिछले दिनों प्रधानमन्त्री श्री मोदी ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर अपना मत प्रकट करते हुए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया । संसद में उनके इस सम्बोधन की भाषा विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र की गरिमा के अनुकूल थी । पिछले दिनों भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा एक पत्र लिखा गया था कि केन्द्र सरकार के सभी मन्त्रालयों, कार्यालयों, उपक्रमों, निगमों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों द्वारा ट्विटर, फेस बुक जैसे सोशल मीडिया पर बनाए गए सभी माध्यमों में हिन्दी या फिर हिन्दी अंग्रेजी का प्रयोग किया जाए । इस पर देश के कुछ भागों में पुनः बवाल मच गया । दक्षिण भारत के राजनेताओं ने इसका पूर्ववत् विरोध किया । जम्मू कश्मीर में भी विरोध

(शेष पृष्ठ 12 पर)

पं० चमूपति एम०ए०

[उच्चकोटि के विद्वान्, लौह लेखनी के धनी पण्डित चमूपति का जन्म 15 फरवरी सन् 1893 को को बहावलपुर (अब पाकिस्तान) में हुआ था। बाल्यकाल में आपका नाम मेहता चम्पतराय था। आप अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि वाले बालक थे। आपको बी०ए० तक देवनागरी का ज्ञान न था, परन्तु आपने एम०ए० संस्कृत में करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। आपने वैदिक धर्म की विचारधारा स्वीकार कर लिए जाने पर सरकारी नौकरी छोड़कर गुरुकुल मुलतान में अधिष्ठाता के पद पर कार्य किया। आचार्य रामदेव जी की प्रेरणा पर आपने लाहौर आकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में कार्य किया। आपने सभा के मुखपत्र-"आर्य" का सम्पादन किया। कालान्तर में आप गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य व मुख्याधिष्ठाता बने। आप अप्रतिम विद्वान् थे तथा हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओं पर आपका समान अधिकार था। आपके प्रकाशित ग्रन्थों में-जीवन ज्योति, संध्या रहस्य, देवयज्ञ रहस्य, वैदिक दर्शन, वैदिक सिद्धान्त, दयानन्द आनन्द सागर, आदि प्रमुख है। आपकी ही कृति "रंगीला रसूल" के कारण महाशय राजपाल जी का लाहौर में बलिदान हुआ था। आपका निधन 15 जून 1937 को हुआ।

प्रस्तुत लेख-"दयानन्द थे मानवता के संगीत" महर्षि दयानन्द के प्रति आपकी भावांजलि प्रेरक तथा प्रासंगिक है। -सम्पादक]

दयानन्द थे मानवता का संगीत

—पं० चमूपति एम.ए.

गतांक से आगे-

स्त्री ? पुरुष ?

दयानन्द ने विवाह नहीं किया। गृहस्थ न बना। स्त्रियों से दूर रहता था। मगर पुत्र तो एक स्त्री का ही था। स्त्री उसकी मानवता का एक अंग थी। कर्णवास में एक बुढ़िया उसक चरणों में आई और उपदेश चाहा। दयानन्द ने कहा गायत्री का जाप किया कर, बुढ़िया चकित रह गई। स्त्रियां और मन्त्र ? मानवता के पुतले की आंखों में आंसू आ गये। कहा बलवानों ने अबला की कोमलता को दुर्बलता में बदल दिया है। लगे हाथ उसे जीवन के अधिकारों से भी वंचित कर दिया है। स्त्री मृदु, सौम्य और स्वयं परमात्मा भी मृदु है। ज्ञान भी मृदु है और सौम्य का सौम्य पर अधिकार है। स्त्री संस्कृति की पोषिका है और आज सांस्कृतिक परिवेश से हम उसे बाहर किये बैठे हैं। मानवता की वृद्धा माता ! तू प्राचीन मानवता का अधिकार ले। वाक् और श्रद्धा के समान वेदवाणी पर अधिकार कर और उसके माधुर्य की (सरिता) संसार में नहा। किसी देवी ने समाधि में माथा टेका तो प्रायश्चित किया। दो दिन भूखे रहे। छोटी बच्ची को माथा झुकाकर प्रणाम किया।

मानवता ने मानवता के स्रोत को पहचाना और उसके महत्व के सम्मान से स्वयं को सम्मानित और महत्वशाली बनाया ।

स्वतन्त्रता और अनुशासन

दयानन्द स्वतन्त्रता का देवता है वो स्वतन्त्रता को मानवता का प्रथम अधिकार मानता है । पशु बन्धन से वश में आता है । मनुष्य उन्मुक्त होने से उसका बन्धन उसकी स्वतन्त्रता की भूमिका है । बच्चे को अंगुली से पकड़ते हैं इसलिए कि उठ सके । सिधाना सिखाना स्वतन्त्र मानवता का राजपथ है । उच्छृंखल होना स्वतन्त्रता नहीं । न ही जंजीरों में बांधना शिक्षा का साधन है। स्वतन्त्रता में बन्धन है और बन्धन मे स्वतन्त्रता है । दयानन्द का परमात्मा अपने नियमों में आबद्ध है । वह किसी उच्छृंखल परमात्मा का उपासक नहीं, दुष्टों के लिए नियम बन्धन हैं परन्तु सज्जनों के लिए नियम स्वतन्त्रता है । स्वतन्त्र मानवता नियम बनाती है और नियम के अधीन रहती है । उसकी दृष्टि में नियम-भंग पतन है । शिक्षित आत्मा स्वभावतः स्वतन्त्र है और नियम पालन उसका स्वभाव है ।

तपस्या विश्राम ?

लोग नई सभ्यता पर मोहित हैं । दयानन्द ने प्राचीन सभ्यता को पुकारा, आ! वो पर्वतों से निकली और तपस्या बन गई । संसार ने शरीरिक सुखों को सभ्यता समझा था । उसने तपस्या की पराकाष्ठा प्रस्तुत की और कहा कि वास्तविक सभ्य वनों में रहते हैं । पर्वत जंगलियों के घर नहीं, सभ्य लोगों की कुटिया हैं ।

स्वामी राजाओं का राजा था । उदयपुर के राणा आते हैं तो धरती पर बैठते हैं । क्योंकि गुरु के सम्मुख शिष्य का आसन धरती ही है । परन्तु गुरु की सरलता देखिये । भ्रमण से लौट रहे हैं गाड़ीवान की गाड़ी कीचड़ में धंस गई है, निकाले नहीं निकलती । मेरा कुन्दन जैसा स्वामी कीचड़ में उतरता है और बैलों को खोलकर स्वयं गाड़ी खींचता है । इस सभ्यता के न्यौछावर और इस मानवता के बलिहारी । सरवरे कायनात ने तो संसार को सताने में अपना बड़प्पन जाना । मेरे मानव संन्यासी ने कहा नहीं ! बड़प्पन रक्षा करने में है ।

राष्ट्रीय कार्यों में विद्वानों का गुरु, सामाजिक क्षेत्र में समाज का पथ-प्रदर्शक, उद्योगधन्धों में उद्योगपतियों का मार्ग-दर्शक, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में गोखले का भी नेता कौन था ? वही मानवता का संगीत है, जिसे दयानन्द कहते हैं ।

शरीर ? आत्मा ?

कोई शरीर को सुखाता था, कोई शरीर को जलाता था । शरीर का

घटाना आत्मा की उन्नति समझा जाता था । उधर कोई-कोई अपनी इन्द्रियों को ही आत्मा बता रहा था । शारीरिक सुखों को आत्मिक आनन्द का पर्याय बना रहा था । एक ओर सुख का दर्शन था तो दूसरी ओर दु:ख का । पहले को पढ़ा तो प्रसन्न हो गये । दूसरे का अध्ययन किया तो आंसू बहा दिये । मिठास बढ़ते-बढ़ते कड़वी हो गई । दर्द पराकाष्ठा पर पहुंचा तो दवा बन गया । मिठास का इच्छुक मिठास से वंचित रहा और पीड़ा का अभ्यस्त पीड़ा से । शान्ति न यहां थी न वहां थी । मानवता की तार हिली उससे तान निकली । शरीर आत्मा का कवच है । इन्द्रियां शस्त्र हैं । उनके बिना न शत्रुओं से युद्ध हो सकता है और न व्यक्तित्व की सुरक्षा । शारीरिक कोमलता आत्मा की स्वच्छता नहीं । घटाने का नाम क्यों लेते हो दोनों को बढ़ाओ । भीतर की आंखें बाहर के नेत्रों की अपेक्षा रखती हैं । उपनेत्र लगाना विद्वत्ता का सूचक नहीं । सूखी हड्डियों से तपस्या क्या होगी । मेरे स्वामी ने एक हाथ से बग्घी को रोका और दूसरे से दिल को । पहलवान उसके बलिष्ठ भुजाओं को न झुका सके तो वेश्या उसके मन को न झुका सकी ।

व्यष्टि ? समष्टि ?

लोग संसार से मुख मोड़ते और ईश्वर से नाता जोड़ते हैं जैसे ईश्वर ससांर से दूर है । किसी कुटिया में बन्द है, नगर में नहीं रमता । निवृत्ति रखता है, प्रवृत्ति नहीं । स्वामी ने नदी के तट से मन हटाया, पर्वतों की गुहाओं से आसन उठाया कि यहां तरंगें हैं, सर-सर है । मन की एकाग्रता नहीं रहती । अपने मन की कुटी में स्थिर किया, न कोई दूसरा होगा न एकाग्रता मिटेगी । समाधि के आनन्द लिये, आत्मा ने आत्मा को देखा । आनन्द हुआ, शान्ति हुई । परन्तु पूर्णरूपेण परमेश्वर के दर्शन न हुए ।

नगरों से शोर उठा इधर आओ, खतों से आवाज आई हमें देखें, यहां परमात्मा है । व्यवसायी के व्यवसाय, कृषक की खेती, राजाओं का राज, सन्तों की मस्ती, किसके कारण से है । आज तक विश्राम करने वाले परमात्मा को देखा है तो काम करने वाले परमात्म को भी देख, निठल्ले के दर्शन किए हैं तो व्यस्त के भी कर । मौन की समाधि लगाई है तो कोलाहल की समाधि भी लगा । इस कोलाहल में भी एकाग्रता है ।

स्वतंत्र ? परतन्त्र ?

मानव समाज के दस नियम बने, पांच व्यक्तिगत जीवन के लिए और पांच सामाजिक जीवन के लिए । स्वतन्त्र और परतन्त्र की भी एक पहेली थी जिसे कोई न बुझाता था । एक बुझारत थी जो किसी की समझ न आती थी। यहां घोड़े के बिना गाड़ियां चलती थीं । समुद्र राजमार्ग बन गये थे । लोग हवा में उड़ते थे । आवाजें दौड़ती थीं । अब की बार के पार की वस्तु कंधार के

पार न थी । मनुष्य की दृष्टि पर्वतों को चीर गई थी । सब कहते थे मनुष्य स्वतन्त्र है । प्रकृति सेविका है मनुष्य स्वामी है । परन्तु फोड़ा निकला और अच्छा न हुआ । घाटा पड़ा और पूरा न हो सका। मृत्यु आई और टाले न टली। जब प्रयासों में असफलता देखी तो झट बोले मनुष्य परतन्त्र है, और भाग्य के भरोसे निकम्मे हो बैठे । कभी पुरुषार्थ सूझा तो जानतोड़ परिश्रम किया । इस प्रकार जीवन दो विरोधों का संगम हो गया ।

मानवता की पहेली का समाधान मानवता रहती है और कहा कि कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र । सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के कुछ नियम हैं । उसके अधीन हम हैं और सर्वशक्तिमान् भगवान् भी । ईश्वर और जीव दोनों अनादि और अनन्त हैं, पुण्य का आदेश भगवान् करते हैं । परन्तु आचरण करने का बोझ हम पर है । कर्म करना जीव का स्वभाव है । पुण्य-पाप का अन्तर परमेश्वर की कृपा से पता लगता है । इसके पश्चात् हमारी पसन्द है हम जिधर हो लें । बुराई भी भगवान् के पल्ले मढ़ना और भलाई भी । यह सर्वशक्तिमान् की महिमा को बढ़ाता नहीं पुण्य और पाप सदा से थे क्योंकि जीव सदा था । यदि जीव का आरम्भ हो तो परमात्मा उससे पहले होगा तब पाप कहां से आ गया । जीव की स्वतन्त्रता अनादिकाल से है जैसे उस की परतन्त्रता अनादिकाल से है । कर्म वह अपनी इच्छा से करता है । परन्तु फल पाने में उसकी इच्छा नहीं पूछी जाती । वर्तमान जीवन के दु:ख जीव के पूर्व-जीवन के कर्मों का फल है । जो हमने बोया है । उसका फल हमें हर मूल्य पर काटना होगा । अत: वर्तमान जीवन के दु:खों को प्रसन्ता से सहना और भविष्य के लिए शुभ कर्मों की खेती करना ये जीव की परतन्त्रता और स्वतन्त्रता दोनों हैं । दोनों में वीरता है और दोनों में मानवता ।

आवागमन का दर्शन हमें आलसी नहीं बनाता निराशा नहीं पैदा करता-ये दर्शन हमें साहस और वीरता देता है । भाग्य के आगे हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना और पुरुषार्थ के पांव में जंजीर डाल देना, ये मानवता के संगीत के विरुद्ध है । उसने स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के स्वर के आरोह-अवरोह को एक किया और राग का सुर मिला दिया ।

सरगम

1. दयानन्द परमात्मा न था, ये नीचा सुर था ।
   दयानन्द परमात्मा का प्रतिनिधि था जैसे हम हैं, ये ऊंचा सुर था ।
2. दयानन्द पूर्ण न था, ये नीचा सुर था ।
   दयानन्द पूर्णता का प्रयास था, ये ऊंचा सुर था ।
3. दयानन्द ने ब्राह्मण को मनुष्य कहा, ये नीचा सुर था ।
   दयानन्द ने शूद्र को ब्राह्मण बनाया, ये ऊंचा सुर था ।

(शेष पृष्ठ 18 पर)

विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी'

[प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक तथा निष्ठावान् आर्य श्री विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जनपद के फरीदनगर कस्बे में 19 जुलाई सन् 1899 को हुआ था । आपका जीवन प्रारम्भ से ही आर्यसमाज के माध्यम से देश-सेवा और समाज सुधार के लिए समर्पित रहा । आप 'अखिल भारतीय आर्य कुमार परिषद्' के दृढ़ स्तम्भ रहे । सन् 1937 में उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का जो "स्वर्णजयन्ती समारोह" मेरठ में मनाया गया था, उसके आप प्रेरणा स्रोत थे । आप मेरठ जनपद की प्रमुख शिक्षा संस्था 'गुरुकुल डोरली' के वर्षों तक मन्त्री तथा प्रधान रहे । अपनी जन्मभूमि फरीदनगर में 'कन्या पाठशाला' का निर्माण कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । सन् 1923 में आपने "मातृभूमि" (सा०) का प्रकाशन किया और बाद में सन् 1933 में "तपोभूमि" मासिक पत्र का वर्षों तक सम्पादन किया । आपने "वेद सुधा" और "पंचायती राज" का भी सम्पादन संचालन किया । आपने 'ऋषि दयानन्द जीवन', 'उत्तराखण्ड के वन पर्वतों में ऋषि दयानन्द', 'ऐतिहासिक नगर मेरठ और ऋषि दयानन्द' 'स्वामी दयानन्द जी की दिव्य वाणी', 'वैदिक सन्ध्या', 'आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न', 'आर्यसमाज का इतिहास', 'नारायण-सुधा', 'पाप-पुण्य', 'हिन्दुत्व की रक्षा का महान् प्रश्न', आदि लगभग दो दर्जन पुस्तकों की रचना की । आपका निधन 22 जनवरी सन् 1974 को हुआ । प्रस्तुत लेख "आर्य कुमार", कोलकाता के जनवरी 1927 के अंक से उद्धृत किया गया है । –सम्पादक]

आर्यकुमारों उठो !

कुमारों ! आप वही हैं न ? जो संसार में कर्मक्षेत्र तैयार करके स्वयं सबसे आगे पग बढ़ाते हैं । आप ही में तो वह विलक्षण शक्ति विद्यमान है जो जातियों के उत्थान हेतु बलि देने में तनिक भी आनाकानी नहीं करने देती !

कुमारों ! आप आर्य जाति के भूषण हैं । आप ही से आर्य जाति का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है । आप ही ने मृत-प्रायः जाति में जीवन संचार किया है । कुमारों ! इस समय आपके अवलम्बन के हेतु चहुँ ओर से जनता ने लालसामय कर पसार रक्खे हैं । आपके लिये माताओं ने बधाई देने की ठान रक्खी है । सावधान होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करिये ।

कुमारों ! आप उस सेना के वीर हैं जिसमें पैदल, पल्टन, घुड़सवार आदि सभी होते हैं । आप में से जो पंडित हैं, अपनी पंडिताई से संसार को चकित करिये । जो अन्य कार्य में निपुण हैं, उन कार्यों से आर्य जाति की रक्षा में दत्तचित्त हो जाइये । कुमारों ! देखो, सामने देखो ! करोड़ों मनुष्य आप पर आशा की दृष्टि लगा रहे हैं, उनकी आशा को पूरा करो । यदि आपने उनको निराश कर दिया-देखना इस अपराध का फल भोगना कठिन हो जायेगा ।

कुमारों ! उठो अपने बल पर उठो ! प्रभु की अपार दया हो चुकी है, उसने मार्ग दिखा दिया है । आपके लिए कंटकाकीर्ण मार्ग बहुत सरल हो गया है । आप सचेत हो चुके हैं । अब केवल कार्य करने की आवश्यकता है ।

कुमारों ! आप भारत के रत्न हैं । आर्यजाति को गौरवशाली बनाने वाले हैं । अपकी सम्मिलित शक्ति संसार को चकित कर देगी । आप केवल अपने ऋषि दयानन्द का पाठ सुनाइये । आप वैदिक सन्देश को भारत के कोने-कोने में पहुँचाइये । इसी के द्वारा आप अन्य कार्यों को सरलता से पूर्णकर लेंगे ।

कुमारों ! देखो, तनिक ध्यान से देखो ! 22 करोड़ (अब सौ करोड़) भारत माता के हिन्दुओं ने इस भयंकर तूफान के समय में छोटी-छोटी कितनी नवकायें समुद्र में डाल रक्खी हैं । किसी को कुछ पता नहीं कि किस ओर जाकर लगेगी । इनका बूढ़ा मल्लाह खेता-खेता प्रगाढ़ निद्रा में प्रभु की गोद में चला गया है । अब इस बेढ़े को खेने के लिये-इसको सुसंगठित करने के लिये तत्पर हो जाओ ।

कुमारों ! एक स्वर से जय-जयकार करते हुए इस आर्य जाति की नौका को पार लगा दो । परमात्मा बल देंगे, साहस देंगे-दृढ़ता प्रदान करेंगे । ●

(पृष्ठ 6 का शेष)

हुआ । यह पुनः स्पष्ट किया गया कि हिन्दी अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के प्रति सम्मान आवश्यक है ।

हिन्दी तो स्वतः ही आगे आ रही है । पिछले दिनों मद्रास हाई कोर्ट में एक याचिका प्रस्तुत की गई थी, जिसमें तमिलनाडु सरकार के उस फैसले को चुनौती दी गई है कि जिसके अनुसार दसवीं कक्षा तक के बच्चे स्कूल में सिर्फ तमिल भाषा पढ़ सकते हैं । याचिका कर्ताओं का तर्क है कि बच्चों का हिन्दी और अन्य भाषाएं जानना जरूरी है । तभी वे कहीं जाकर नौकरी कर सकते हैं । यह विचारणीय है कि हिन्दी न पढ़कर अथवा राजकाज में हिन्दी भाषा को व्यवहार में न लाकर क्या हम स्वतन्त्रता सेनानियों का अपमान नहीं कर रहे हैं, जिन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन के समय भी हिन्दी भाषा को प्रमुखता दी थी । और जो चाहते थे कि हिन्दी सम्पूर्ण देश की भाषा बने । आर्यसमाज प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषा का समर्थक रहा है । यह भी सुनिश्चित है कि हिन्दी का विरोध करने वाले आगामी पीढ़ी के भविष्य को धूमिल कर रहे हैं । हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो सारे देश में बोली और समझी जाती है। हिन्दी का अध्ययन और व्यवहार अपरिहार्य आवश्यकता है ।

—सम्पादक

मुनि ओमाश्रित

[उच्चकोटि विद्वान्, हिन्दी व अंग्रेजी के सुलेखक मुनि ओमाश्रित, पूर्वाश्रम में श्री शिवचन्द्र (एस. चन्द्रा) का जन्म उत्तरप्रदेश के अलीगढ़ नगर में सन् 1903 में हुआ था। आपके पिता श्री रामलाल जी ने अपने विद्यार्थी काल में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन किए थे तथा उनके उपदेशों को सुनकर उनके भक्त बन गए थे। आप पर भी पिता के संस्कारों का गम्भीर प्रभाव पड़ा तथा आप आर्यसमाज के वरिष्ठ नेता पं० रासबिहारी तिवारी जी के परामर्श पर सरकारी नौकरी छोड़कर सन् 1933 में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की सेवा में चले गये। आपने सभा में लगभग चार दशकों तक कार्यालय मन्त्री, उपमन्त्री, पुस्तकाध्यक्ष, आजीवन सदस्य के रूप में कार्य किया। आपने The Case of Arya Samaj in Hydrabad, The Case of Satyarth Prakash in Sindh, Hindu Race and Future of India, India to be named Aryavarta आदि पुस्तकों की रचना की थी। आपका निधन 7 जुलाई, 1984 को दिल्ली में हुआ। प्रस्तुत लेख "सार्वदेशिक" (सा०) के आर्यसमाज स्थापना शताब्दी विशेषांक 1975 से उद्धृत किया गया है। –सम्पादक]

आर्यसमाज साधन है और वैदिक मानव धर्म साध्य है

सन् 1875 के चैत्र मास की प्रतिपदा को इस देश की प्रसिद्ध नगरी बम्बई में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस स्थापना को सौ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। अतः समस्त विश्व में जहां भी आर्य निवास करते हैं, वहां आर्यसमाज शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। इस संस्था का नाम आर्यसमाज ही क्यों रखा गया और किस उद्देश्य से इसके महान् संस्थापक ने इसकी स्थापना की, इस तथ्य को अभी तक बहुत कम लोगों ने समझा है। इस विषय की कुछ पृष्ठभूमि है, जिसे समझे बिना आर्यसमाज का वास्तविक स्वरूप और उसका उद्देश्य समझ में नहीं आ सकता।

आर्यसमाज की पृष्ठभूमि

करोड़ों वर्ष तक सृष्टि की रचना से लेकर गत पांच सहस्र वर्ष (महाभारत काल) तक समस्त विश्व में सनातन सार्वभौम तथा सर्वतन्त्र सत्यों का ही एक मानव वैदिक धर्म के रूप में प्रचार था। समस्त भूमण्डल में इन सत्यों के अनुयायी आर्य कहलाते थे। आर्य शब्द का मौलिक अर्थ है ईश्वर पुत्र अर्थात् ईश्वरीय आज्ञायें जो सनातन, सार्वभौम तथा सर्वतन्त्र सत्यों में निहित हैं, उन्हें पालन करने वाले श्रेष्ठ, सदाचारी, धर्मात्मा, सत्यवादी, सुसंस्कारी तथा प्रगतिशील मनुष्य ! इस प्रकार आर्य शब्द से ईश्वर का पितृत्व

तथा मानव जाति का आपस में भ्रातृत्व का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध हो जाता है। आर्य शब्द के विपरीत अनार्य शब्द है, जिसका अर्थ है दस्यु अर्थात् ईश्वरीय आज्ञाओं के विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति !

लम्बे काल चक्र के पश्चात् महाभारत के पूर्व ऐसा समय आ गया था जब कि मानवधर्म का अर्थ, प्रचार तथा व्यवहार अशुद्ध रूप से किया जाने लगा, जिसके परिणामस्वरूप मानव समाज को विभाजित करने वाले मनुष्यों द्वारा चलाये गये विरोधात्मक मत-मतान्तर, पंथ, सम्प्रदाय, मजहब एवं रिलीजन ईश्वर के नाम पर स्थापित किये गये। ईश्वर तथा धर्म जो अपने श्रेष्ठतम गुणों के आधार पर समस्त मानव समाज में एक विशाल मानव परिवार के रूप में एकता स्थापित करने तथा उसे प्रेम-पाश में बांधने और ऊंचा उठाने के कारण होने चाहिये थे। वे उसके विपरीत उसे विभक्त करने, गुरुडम और अन्धविश्वास फैलाने तथा लड़ाई-झगड़े तथा वैमनस्य के कारण बना दिये गये।

महाभारत काल से पूर्व मनुष्य द्वारा स्थापित किसी भी मत, पंथ, सम्प्रदाय, मजहब एवं रिलीजन के प्रचार का संसार के इतिहास में पता नहीं चलता। संसार के इतिहास में सर्वप्रथम मनुष्य द्वारा स्थापित किया गया जरूस्तु मत है। लगभग साढ़े चार सहस्त्र वर्ष हुए यह मत महात्मा जुरूस्तु द्वारा ईरान देश में स्थापित किया गया था। इसके पश्चात् लगभग चार सहस्त्र वर्ष हुए फिलस्तीन में हजरत मूसा द्वारा यहूदी मत स्थापित किया गया। इसके पश्चात् ढाई सहस्त्र वर्ष हुए इसी आर्यावर्त देश में महात्मा बुद्ध द्वारा बौद्ध मत तथा श्री महावीर स्वामी द्वारा जैन मत स्थापित किये गये। इसके पश्चात् दो सहस्त्र वर्ष से कुछ अधिक हुए श्री स्वामी शंकराचार्य ने शंकर मत स्थापित किया जो बाद में पौराणिक रूप धारणकर शैव, शाक्त, द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट अद्वैत, नवीन वेदान्त आदि सम्प्रदायों के रूप में विभक्त हो गया। यह रूप अब भी विद्यमान है। बाद में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस मत के अनुयायियों को हिन्दू नाम से तथा इस देश को हिन्दुस्तान नाम से सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया। सम्प्रति इस लेख में हिन्दू शब्द की उत्पत्ति और भावना की विवेचना में न जाते हुए केवल इतना ही स्पष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि यह हिन्दू शब्द किसी भी प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ जैसे वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन शास्त्र, रामायण, महाभारत तथा गीता में नहीं मिलता। इस पर भी लोगों के महाअज्ञान के कारण शंकर मत हिन्दू मत के नाम से प्रचलित तथा प्रसिद्ध हो गया, जो अब भी इसी नाम से प्रचलित है। इस मत के पश्चात् महात्मा ईसा द्वारा जोरूसलम में स्थापित किया हुआ 1975 वर्ष पुराना ईसाई मत है। इसके बाद हजरत मोहम्मद द्वारा अरब में स्थापित किया हुआ 1395 वर्ष पुराना मौहम्मदी अर्थात् इसलाम मत है। इस प्रकार इन मनुष्यों

द्वारा प्रचलित मतों ने एक मानव धर्म तथा मानव जाति के एक विशाल परिवार को विभक्त कर आपस में मतभेद और वैमनस्य उत्पन्न कर दिया ।

वेदरूपी ईश्वरीय ज्ञान प्रवाह से अनादि है

परन्तु वेदरूपी ईश्वरीय ज्ञान एवं वैदिक धर्म प्रवाह से अनादि है और सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का क्रम भी प्रवाह से अनादि है । ज्यातिष शास्त्र के आधार पर वर्तमान सृष्टि के निर्माण को इस समय 1,97,29,49075 (एक अरब, सत्तानवे करोड़, उनतीस लाख उनचास सहस्त्र पिचहत्तर) वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । अतः वैदिक धर्म एवं ईश्वरीय ज्ञान प्रवाह से अनादि होने के कारण इस वर्तमान सृष्टि में उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी यह सृष्टि है।

मानव वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने का यत्न

योगेश्वर भगवान् कृष्ण के पश्चात् केवल महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही वैदिक विद्या के अथाह सागर को अपने आदित्य ब्रह्मचर्य, अनुपम घोर तपस्य, महान् योगबल तथा प्रकाण्ड पाडित्य द्वारा मंथन कर सनातन, सार्वभौम तथा सर्वतन्त्र सत्यरूपी मणियों को विशुद्धरूप में प्राप्त किया था । जन्म-जन्मान्तरों के महान् उत्कृष्ट संस्कारों से युक्त वह एक निर्मल, स्पष्ट, तीक्ष्ण तथा दिव्य दृष्टि प्राप्त किये हुए एक दीर्घ द्रष्टा के रूप में कार्य क्षेत्र में अवतरित हुए । यह महर्षि दयानन्द को ही सौभाग्य प्राप्त था कि वह उस समस्त झाड़झंकाड़, कूड़ाकरकट तथा विरोधात्मक अवतारवाद, मूर्तिपूजा, गुरुडम, अन्धविश्वास, पाखण्ड तथा नाना प्रकार के अन्य अनिष्टकारक तत्त्वों को जिन्हें गत पांच सहस्त्र वर्षों में मनुष्यों द्वारा चलाये गये मतों, पंथों, सम्प्रदायों, मजहबों एवं रिलीजन ने संसार के अन्दर उत्पन्न कर दिया था, अपनी अगाध विद्या, बुद्धि, तर्क तथा युक्तियों के घन की चोटों से जड़मूल से नष्ट कर पांच सहस्त्र वर्ष के पश्चात् एक सार्वभौम मानव वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करते और ईश्वर और धर्म के नाम पर उपर्युक्त मतों द्वारा विभाजित की हुई मानवता को पुनः एक सूत्र में बांधने का यत्न करते । तदनुसार उन्होंने अपना समस्त जीवन उसी अनादि मानव वैदिक धर्म को पुनः स्थापित, पुनर्जीवित तथा प्रसार करने में अर्पण कर दिया ।

वैदिक धर्म-प्रचार करने वाली संस्था का नाम आर्यसमाज ही क्यों रखा ?

विभिन्न मतों के संस्थापकों ने अधिकांश में अपने ही नामों से अपने मतों की स्थापना तथा प्रचार किया । यदि महर्षि दयानन्द चाहते तो अन्यों की भांति वह भी अपने नाम से एक नये मत के रूप में दयानन्द मत स्थापित कर सकते थे । परन्तु उनको ऐसा करना अभीष्ट नहीं था, चूंकि वह अन्य लोगों

की तरह कोई नवीन मत, पंथ, सम्प्रदाय, मजहब एवं रिलीजन चलाना नहीं चाहते थे ।

स्वामी दयानन्द का चरित्र तथा व्यक्तित्व जितना ऊंचा था, उनकी विद्वता जितनी अगाध थी उनका कार्य जितना महान् था, उनका कार्यक्षेत्र जितना विशाल था, उसके अनुरूप उन्हें अपने जीवन में कोई योग्य शिष्य नहीं मिल सका । यह वास्तव में बड़े दु:ख और दुर्भाग्य की बात थी । इस अभाव को वह स्वयं भी अनुभव करते थे । इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अब उनके सन्मुख एक कठिन समस्या यह थी कि उनके जीवन के पश्चात् इस सार्वभौम तथा आर्य संस्कृति का प्रचार विश्व में सदैव किस प्रकार होगा तथा कौन करेगा ? इस समस्या की पूर्ति के लिए थोड़े से समय में ही जहां उन्होंने वेद के आधार पर मानव-कल्याणार्थ कई उपयोगी ग्रन्थों की रचना की, वहां वह एक सार्वभौम आन्दोलनात्मक संगठित संस्था भी साधन के रूप में स्थापित करना चाहते थे ।

उस समय देश में लोगों ने ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, देवसमाज, रामकृष्ण मिशन, राधास्वामी मत आदि नामों से संस्थायें स्थापित की हुई थीं। इन संस्थाओं के संस्थापकों में से किसी का भी उद्देश्य महर्षि दयानन्द की तरह सनातन वैदिक सत्यों के आधार पर प्राचीन काल के समान एक मानव धर्म पुनः स्थापित करना नहीं था । और न ही उन महानुभावों में से किसी ने वेद के वास्तविक ज्ञान और उसमें उल्लिखित आर्य शब्द के सही अर्थ और महत्त्व को समझा और उसका प्रचार किया । महाभारत काल के पश्चात् महर्षि दयानन्द ने ही घोषित किया कि वैदिक धर्म ही सनातन सत्यों पर आधारित होने के कारण आर्य धर्म कहलाता है और सार्वभौम और सर्वतन्त्र सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण मानव धर्म कहलाता है । पौराणिक हिन्दू मत सनातन धर्म नहीं है ।

वेद में आर्य शब्द गुणवाचक है । यह शब्द देश, काल और सीमा की परिधि से बाहर है । जिस व्यक्ति के आचरण में आर्यत्व एवं श्रेष्ठता होगी, वह विश्व के किसी भी भाग में जन्मा हो और निवास करता हो वह आर्य है। वेद में कहा गया है– *"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"* अर्थात् संसार को आर्य (श्रेष्ठ) बनाओ । दूसरों को आर्य वही बना सकता है जो स्वयं अपने चरित्र और व्यवहार में आर्य बना हुआ है । जो दीपक स्वयं प्रकाशित है, वही दूसरे बिना जले दीपकों को भी प्रकाशित कर सकता है ।

एक दूसरे स्थान पर वेद में कहा गया है– *"अहम् भूमिम् अददाम् आर्य्याय"* अर्थात् ईश्वर आदेश देता है कि मैंने यह भूमि अपने श्रेष्ठ एवं सदाचारी पुत्रों को दी है । इसका स्पष्ट अर्थ है कि इस भूमि पर श्रेष्ठ और

सदाचारी मनुष्यों का आधिपत्य तथा शासन होना चाहिए । लोग ईश्वर को अपना पिता, पृथ्वी को अपनी माता और आपस में एक दूसरे को अपना भाई समझें । तब ही इस पुथवी पर बसे लोग एक विशाल मानव परिवार के रूप में सुख समृद्धि और शान्ति के साथ निवास कर सकते हैं । संसार के समस्त साहित्य में मानव जाति में सदाचार तथा अन्य गुणों को लाने के लिए और विशाल मानव परिवार को एकता के सूत्र में बांधने के लिए आर्य शब्द से अधिक प्रेरणादायक तथा स्फूर्तिदायक अन्य कोई शब्द नहीं है ।

आर्यसमाज की स्थापना

अतः महर्षि दयानन्द ने अत्यन्त गम्भीर विचार के पश्चात् संसार के समस्त श्रेष्ठ मनुष्यों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए आर्य शब्द के महत्व, उपयोगिता तथा उसके उत्कृष्ट भावों को समझते हुए आर्य शब्द से ही सर्व प्रथम सन् 1875 में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को बम्बई नगरी में एक संगठन, संस्था की आन्दोलनात्मक साधन के रूप में आर्यसमाज नाम से स्थापना की । आर्यसमाज का स्पष्ट अथ है–आर्यों का समुदाय अर्थात् ईश्वर के श्रेष्ठ और सदाचारी पुत्रों का समुदाय ।

आर्यसमाज के नियमों की सार्वभौमिकता

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना करते समय वेद के अधार पर आर्यसमाज के दस नियम निर्माण किये थे । यदि उन्हें आद्योपान्त पढ़ा जाये तो प्रत्येक बुद्धिजीवी, निष्पक्ष और सत्यान्वेषण करने वाला व्यक्ति इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि वे सब ही नियम सार्वभौमिकता की भावना से ओत-प्रोत हैं । उनमें न हिन्दुओं की चर्चा है और न हिन्दुस्तान की और न किसी काल और सीमा की । उन नियमों में प्रथम तथा द्वितीय नियम ईश्वर की सत्ता और उसके गुणों के सम्बन्ध में है । तीसरा नियम वेद के महत्व और उसकी उपयोगिता के विषय में है । चौथा तथा पांचवां नियम सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को त्यागने तथा सत्य और असत्य का विचार कर के धर्मानुसार कार्य करने के विषय में है । छठे नियम में बताया गया है :–

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है । अर्थात् शरीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।" संसार का उपकार करना और उसके निवासियों की त्रिविध उन्नति करना । इससे बढ़कर सार्वभौमिकता और विशाल मानव परिवार की भावना का सूचक इस संसार के इतिहास और साहित्य में और क्या हो सकता है ? सातवां नियम सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार के सम्बन्ध में है ।

(क्रमशः)

(पृष्ठ 10 का शेष)

4. दयानन्द ने पुरुष को पुरुष कहा, ये नीचा सुर था ।
   दयानन्द ने स्त्री को पुरुष की माता बताया, ये ऊंचा सुर था ।
5. दयानन्द ने तपस्या को सभ्यता कहा, ये कठोर सुर था ।
   दयानन्द ने शरीर को आत्मा का कवच कहा, ये कोमल सुर था ।
6. दयानन्द व्यक्ति हुआ, ये पतला सुर था ।
   दयानन्द समाज बन गया, ये मोटा सुर था ।
7. दयानन्द फल भोगनें में परतन्त्र रहा, ये मद्धिम सुर था ।
   दयानन्द कर्म करने में स्वतन्त्र था, ये ऊंचा सुर था ।

संगीत क्या था पूरी सरगम थी । दयानन्द ने ये संगीत सुना, गाया और स्वयं संगीत बन गया । हम संगीत-विद्या में सिद्धहस्त नहीं हैं । इसलिए पूरा ताल नहीं समझे । इस विद्या के जानकार आएं और संगीत को पहिचानें और अपनी समझ के अनुसार मानवता के पुतले दयानन्द का गीत गायें । ●

लाला चतुरसेन गुप्त आर्य पुस्तकालय

ओम्-प्रतिष्ठान के अन्तर्गत स्व० लाला चतुरसेन जी गुप्त की स्मृति में आर्य पुस्तकालय की स्थापना की गयी है । इसमें वेद, धर्म, दर्शन, संस्कृति, प्राचीन इतिहास, योग आदि विषयों की अनेक दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह किया जा रहा है ।

आर्य महानुभावों से निवेदन है कि वे अपना साहित्य भेंट करके योगदान करें ।

आर्य साहित्यसेवी विश्वकोश

दस खण्डों में प्रस्तावित 'आर्यसाहित्य सेवी विश्वकोश' का लेखन कार्य प्रगति पर है । सुविज्ञ पाठकों से विनम्र निवेदन है कि यदि उन्होंने अपना परिचय, चित्र तथा लेखन-कार्य का विवरण अभी तक नहीं भेजा है, तो कृपया अपना परिचय शीघ्र भेजें जिसमें नाम, चित्र, माता-पिता का नाम, पति/पत्नी का नाम, जन्मस्थान और जन्म तिथि (निधन स्थान और निधन तिथि केवल दिवंगत के लिए), जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग, लेखन कार्य का विस्तृत परिचय आदि कृपया शीघ्र भेजें । *–सम्पादक*

गतांक से आगे–

चाणक्यसूत्राणि

अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥७५॥

वाणी की कठोरता आग से भी भीषण होती है ॥७५॥

दण्डपारुष्यात् सर्वजनद्वेष्यो भवित ॥७६॥

दण्ड की कठोरता के कारण सब लोग द्वेष करने लग जाते हैं ॥७६॥

अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ॥७७॥

धन से सन्तुष्ट हो जाने वाले मनुष्य को लक्ष्मी त्याग देती है ॥७७॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥७८॥

दण्डनीति से ही शत्रु विजिगीषु के अधीन होता है ॥७८॥

दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजाः संरक्षति ॥७९॥

दण्डनीति के भरोसे ही राजा प्रजा की रक्षा करने में समर्थ होता है ॥७९॥

दण्डः सम्पदा योजयति ॥८०॥

दण्ड (सेना) ही राजा को सम्पदा से सम्पन्न करता है ॥८०॥

दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥८१॥

जिस राजा के पास सेना न होगी तो उसके पास मन्त्रि वर्ग भी न रहेगा ॥८१॥

न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥८२॥

सेना के रहने पर लोग अकार्य नहीं करते ॥८२॥

दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥८३॥

राजा की आत्मरक्षा दण्डनीति पर ही निर्भर करती है ॥८३॥

आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति ॥८४॥

राजा की आत्मरक्षा से सब की रक्षा हो जाती है ॥८४॥

आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥८५॥

अपनी वृद्धि और विनाश दोनों अपने हाथ में हैं ॥८५॥

दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥८६॥

भली भांति सोच-विचार करके ही दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिए ॥८६॥

दुर्बलोऽपि राजा नावमन्तव्यः ॥८७॥

दुर्बल राजा का भी अपमान न करे ॥८७॥

नास्त्यग्नेर्दौर्बलम् ॥८८॥

क्योंकि आग कभी भी दुर्बल नहीं होती (वैसे ही राजा भी कभी दुर्बल नहीं होता) ॥८८॥

दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥८९॥

सारा सांसारिक व्यवहार राजदण्ड के ही आधार पर चलता है ॥८९॥

वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥९०॥

नियमानुकूल सद्व्यवहार से ही धन का लाभ होता है ॥९०॥

अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥९१॥

धर्म और काम धन से ही सधते हैं ॥९१॥

अर्थमूलं कार्यम् ॥९२॥

धन से संसार के सब काम होते हैं ॥९२॥

यदल्पप्रयत्नात् कार्यसिद्धिर्भवति ॥९३॥

धन हो तो अल्प प्रयत्न के कार्य सिद्ध हो जाता है ॥९३॥

उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥९४॥

उपायपूर्वक कार्य करने से कुछ भी दुष्कर नहीं रह जाता ॥९४॥

अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि विनश्यति ॥९५॥

उपाय के बिना किया हुआ काम बिगड़ जाता है ॥९५॥

कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥९६॥

जो लोग कार्य की सिद्धि चाहते हों, वे उपाय का ही सहारा लें ॥९६॥

कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं सम्पद्यते ॥९७॥

पुरुषार्थ के साथ किया गया काम अवश्य सिद्ध होता है ॥९७॥

पुरुषकारमनुवर्त्तते दैवम् ॥९८॥

दैव (भाग्य) पुरुषार्थी का साथ देता है ॥९८॥

दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥९९॥

दैव के अनुकूल हुए विना प्रयत्न पूर्वक किया गया काम विफल हो जाता है ॥९९॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥१००॥

अशान्तचित्त व्यक्ति का कोई व्यवहार नहीं चल पाता ॥१००॥

पूर्वं निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत ॥१०१॥

पहले सोचकर निश्चय करने के बाद ही काम आरम्भ किया जाय ॥१०१॥

कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्त्तव्या ॥१०२॥

कार्य आरम्भ करने के बाद आलस्य न करे ॥१०२॥

न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥१०३॥

चंचल चित्त वाले मनुष्य का काम नहीं बनता ॥१०३॥

हस्तगतावमाननात् कार्यव्यतिक्रमो भवति ॥१०४॥

हाथ में आये हुए काम का प्रमादवश त्याग करने से कार्य सिद्धि में बाधा खड़ी हो जाती है ॥१०४॥

(क्रमशः)

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं०17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र-दिल्ली ।